आजादी के बाद हरिजनों की स्थितिः सुधार एवं परिवर्तन (पलामू जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ0 बालमुकुन्द पाण्डेय*

समानता मानव मात्र की समानता पर आधारित विचारधारा है। व्यक्ति, व्यक्ति है, चाहे वह स्त्री हो या पुरूष, अछूत हो या हरिजन। न कोई व्यक्ति उच्च जाति का होने के कारण श्रेष्ठ हो जाता है न ही कोई व्यक्ति निम्न जाति का होने के कारण कम श्रेष्ठ। श्रेष्ठता और हीनता की बात प्रकृति प्रदत नही वरन् समाज ने अपनी निहित स्वार्थो में जोड़ी है। आज का समय लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार व स्थापना का युग है। स्वतंत्रता, समानता, भातृत्व, शोषण की समाप्ति, मौलिक अधिकारों की प्राप्ति जैसे अनेकानेक विचारों को प्रत्येक समाज स्वीकारने में अग्रसर है। किन्तु इनके मार्ग में अनेक अवरोध भी है, जिसमें मुख्य हरिजन उत्पीड़न है। हम 21वीं सदी को अत्याधुनिक एवं भेद–रहित समाज के रूप में बदलने के लिये विज्ञान आधारित सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) के सम्पूर्ण उपयोग में लगे है। इस प्रयास के बावजूद जाति के आधार पर समाज में विभाजन आवश्यक रूप से बना हुआ है। जिसमें उंची जाति को समाज में उंचा स्थान तथा हरिजन व दलित जातियों को निम्न स्थान हेतु निम्न से निम्न वैचारिकी एवं कृत्यों को सम्पादित करने में नहीं हिचक रहा है। यही वजह है कि आज के समाज वैज्ञानिकों के अध्ययन का मुख्य विषय दलित व हरिजन उत्पीड़न समस्याएँ एवं परिप्रेक्ष्य हो गया है। इसी संदर्भ को आधार बनाते हुए इस शोध पत्र के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद पलामू जिले में हरिजनों की स्थिति को बताने का प्रयास किया गया है। यहां पर प्रश्न यह है कि क्या वाकई हरिजनों की स्थिति में सुधार हुआ है या वे अभी भी अपने पुराने स्वरूप में बने हुए हैं। इसी बात का प्रस्तुतीकरण इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

महत्वपूर्ण शब्दः हरिजन, पलामू, परिवर्तन, संवैधानिक प्रावधान, जाति।

अगर ऐतिहासिक रूप से देखें तो भारतीय सामाजिक व्यवस्था में समूहों का विभाजन रहा है। जिसमें वैदिक काल में यह विभाजन वर्ण व्यवस्था के आधार पर निर्मित था जिसमें व्यक्ति या समूहों के एक समूह से दूसरे समूह में जाने की अनुमति थी। परंतु बाद में उत्तर वैदिक काल व गुप्त काल से ही हरिजनों या दलितों के साथ भेदभाव किये जाने लगा। इन्हें विविध निर्योग्यताओं से युक्त किया जाने लगा और यह निर्योग्यताएँ धर्म शास्त्र काल में चरम सीमा पर पहुँच गयी। इन्हीं निर्योग्यताओं को निरंतरता में हरिजनों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक प्रस्थिति गिरती चली गयी। महादेव देसाई[1] (The Family Tree) में उद्घाटित किया है कि बौद्धकाल में जाति व्यवस्था पर आघात किया गया था। इस तारतम्य में नानक, कबीर, रविदास, चैतन्य, मीरा आदि संतों ने भी हरिजन की समता पर बल दिया। आधुनिक समय में राजा राम मोहन राय, रानाडे, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, गाँधी इत्यादि का प्रयत्न भी अत्यंत प्रभावी रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् संवैधानिक एवं नियोजन के द्वारा हरिजनों के उत्थान व विकास का प्रयत्न किया गया। चाहे वह प्रयास व्यक्तिगत स्तर पर हों या सामूहिक, कानूनी हों या व्यवहारिक हर स्तर पर हरिजनों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ते हुए सभी प्रकार की सुविधाओं को प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इन प्रयासों के बाद भी वर्तमान में हरिजनों की स्थिति पर समाज–मंथन किया जाये तो क्षेत्रीय आधार पर इसमें विषमता दिखाई पड़ती है। जिसका कारण क्षेत्रीय विषमताओं जनसंख्या वितरण, सामाजिक संस्थानों, जीवन–पद्धति, आर्थिक संरचना, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, शैक्षणिक– स्थिति, राजनीतिक जागरूकता की मात्रा, वैचारिकी इत्यादि की उपस्थिति है।

हरिजन उत्पीड़न संबंधी भेदभाव, अन्याय एवं अत्याचार, शोषण का अमानवीय स्वरूप कभी–कभी हमारे सामने आ जाता है। हरिजन पारिवारिक और सामाजिक हिंसा के शिकार है। जिसमें जातिगत शब्दों का प्रयोग, छूआछूत संबंधी विभेद और सामाजिक बहिष्कार जैसी घटनायें प्रमुख हैं।[2] जाति संबंधी लांछन में रीति–रिवाज, तौर–तरीके, अभिवृतियों, व्यस्थित पूर्वाग्रह, संस्थाएं और संस्थागत वैचारिक

* **समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची**

भिन्नताएं है, जो अत्याधिक पूर्वाग्रहों की चतुराई से हरिजनों पर लांछनों को आरोपित कर देता है। इन सब परिस्थितियों को उत्पन्न करने में समाज की जाति सूचक विचारधारा अधिक जिम्मेदार है, जिससे हरिजन उत्पीड़न की घटनायें अधिकांशतया बढ़ती जाती हैं।

वास्तव में, हरिजन भी समाज का एक अभिन्न अंग है। भारतीय संविधान में हरिजनों को समानता, स्वतंत्रता, समान अवसर, सम्मान एवं सुरक्षा प्रदान की गयी है, फिर भी उत्पीड़न की प्रक्रिया चलती रहती है। इसके पीछे सामाजिक दशा, रूढ़िगत परम्परायें, अशिक्षा, अज्ञानता, अधिकारों के प्रति अनभिज्ञता आदि को कारण माना जाता है। उच्च पद पर आसीन हरिजन समुदाय के व्यक्ति को भी सामाजिक प्रस्थिति एवं पारिवारिक प्रतिष्ठा आज भी उतनी नहीं मिल पाती है। यद्यपि विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्रों में उसे स्थान तो मिल रहा है लेकिन सम्मान उतना नहीं मिल पाता है। आर्थिक शोषण, मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न उसे झेलना पड़ता है।

हरिजन समुदाय की महिलाओं की स्थिति को देखें तो पाते हैं कि दलित महिलाएँ भी उसी तरह अन्य समुदाय को प्राप्त अधिकारों से वंचित है। हम कह सकते है कि उपेक्षित नारी समूह में दलित महिलाएँ अधिक उपेक्षित, अशिक्षित महिलाओं में दलित महिलाएँ अधिक अशिक्षित, प्रताड़ित महिलाओं में दलित महिलाएँ अधिक प्रताड़ित है। महिलाओं के बीच दलित महिलाओं को सेविका, दायी, दिहाड़ी पर काम करनेवाली मजदूर तक सभी तरह के अपमानजनक तथा अमानवीय कार्य का औजार समझा जाता है।[3] बच्चों के प्रसव से लेकर उसके परवरिश तक में दलित महिलाओं की भूमिका सर्वोपरी तो रहती है, लेकिन वे ही महिलाएँ जब उन्हीं बच्चों के बड़ा होने पर उन्हें अपने हाथों भोजन कराना चाहती है तो उन्हें अछूत एवं अस्पृष्य समझकर दूर कर दिया जाता है। बलात्कार की शिकार होती महिलाओं में दलित महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है। बलात्कार के बाद हत्या करने की घटना भी दलित महिलाओं के साथ अधिक होती है। साथ ही, दलित कामकाजी महिलाओं को भी उत्पीड़न अधिक झेलना पड़ता है। गाँव या शहर में घरेलू नौकरानी का मजदूर के नाम पर दलित महिलाओं को काम रखनेवाले अधिसंख्यक लोगों की मानसिकता यह है कि वह उपयोग तथा उपभोग की सामग्री है। आज की आर्थिक तंगी, प्रचलित अंधपरम्परा, सामाजिक कुप्रथा तथा अविकसित जीवन पद्धति के कारण दलित महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी है।

अज्ञानता के कारण उन्हें नागरिक अधिकार, कर्तव्य तथा संवैधानिक उपचारों का ज्ञान भी नहीं हो पाता है। दलित पुरूष भी अपनी महिलाओं का शोषण गैर दलित पुरूषों की तरह ही पुरूषवादी मानसिकता के कारण भोगते है। त्रिवर्षीय राष्ट्रीय अपराधिक आँकड़ों पर विचार करें तो वर्ष 1996 के कुल प्रतिवेदित 1708197 भारतीय दंड विधान के कांड़ों में 20403, वर्ष 1997 के 1719820 में 18685 कांड तथा 1998 के 1779111 में 17471 कांड मात्र दलित समुदाय के व्यक्तियों के प्रतिवेदित हुये है। इसी तरह वर्ष 1996 में 949, वर्ष 1997 में 1037 तथा 1998 में 923 बलात्कार के कांड दलित महिलाओं के साथ प्रतिवेदित है।[4]

चुँकी दलित भी मनुष्य हैं इसलिए उनको भी एक मानव के रूप में सभी अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए। जहां तक मानवाधिकार की बात है तो मानवाधिकार मनुष्य के वे अधिकार है जो उसे मानव होने के नाते मानवोचित गरिमा, प्रतिष्ठा एवं सम्मान मिलना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ 10 दिसम्बर 1948 मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणाओं में मनुष्य की बुनियादी मानवाधिकारों को स्पष्ट किया गया है। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में कहा गया है कि मानवाधिकार से अभिप्राय व्यक्तियों के जीवन, स्वंतत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से संबंधित अधिकारों के अंतर्गत आता है। इसके साथ ही सन् 1993 में भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गयी।[5]

संविधान के अनुच्छेद 15 में यह प्रावधान किया गया है धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक के साथ विभेद नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में महिलाओं को समान अवसर प्रदान करता है। समान कार्य के लिये समान वेतन की व्यवस्था भी की गई है। अनुच्छेद 15 (4) एवं अनुच्छेद 16 (4) में लोक नियोजन में विशेष अवसर प्रदान किये जाने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का उन्मुलन करता हैं ये सभी मौलिक अधिकार हैं। जिनको आवश्यक रूप राज्यों को लागू करने की जिम्मेदारी दी गई है।**अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित**

जनजाति (अत्याचारों पर प्रतिबंध) अधिनियम 1989 –धारा 3(1) (xi) के अनुसार यदि कोई व्यक्ति– जो स्वंय अनुसूचित जाति या जनजाति का न हो– किसी अनुसूचित जाति/जनजाति की महिला को उसकी इज्जत लूटने या अपमानित करने की नीयत से पीटता है या बल का इस्तेमाल करता हैः या धारा 3(1) (xii) के अनुसार यदि कोई गैर अनुसूचित जाति/जनजाति का व्यक्ति किसी अनुसूचित जाति/ जनजाति का व्यक्ति किसी अनुसूचित जाति/ जनजाति की महिला की इच्छा पर हावी होने क स्थिति में है और वैसी स्थिति में उस महिला का यौन शोषण करता है, जिसके लिये वह स्वंय सहमत नहीं हुई थी, तो वह व्यक्ति कम से कम छः माह और अधिकतम पाँच वर्ष की कैद और जुर्माना की सजा पायेगा।[6]

आज कामकाजी एवं दलित महिलाओं पर हो रहे उत्पीड़न के निवारण के लिये राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग सजग है तथा महिला सम्मान की रक्षार्थ सतत् प्रयासरत है। दलित महिलाओं की दिषा–निर्देष तथा स्थिति में सुधार के लिये कानून, संविधान तथा अदालत के पहले सामान्य लोगों की मानसिक दशा में परिवर्तन करना होगा। अतः सामान्य कामकाजी एवं दलित महिलाओं उत्पीड़न की समस्या के समाधान एवं स्थिति–परिस्थिति में सुधार के लिये पुरूषवादी मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन लाना अनिवार्य होगा तथा मानवाधिकार आयोग तथा महिला आयोग को पूर्ण सहयोग एवं समर्थन देना होगा।

स्वातंत्रय और दायित्व एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक के अभाव में दूसरा निरर्थक हो जाता है। स्वतंत्रता के बढ़ते दायरे के साथ दायित्वों का दायरा भी बढ़ जाता है। समाज अपने विभिन्न वर्गो से यह आशा करता है कि वे अपने अलग–अलग गुण–धर्मो के अनुसार सामाजिक प्रगति में अपना उचित योगदान करेंगे। ऐसा करना उनका सामाजिक दायित्व है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सामाजिक न्याय प्राप्त करने की दिशा में बहुत प्रयास किये गये हैं कुछ प्रयास राजनीतिक दलों के द्वारा हुए हैं तो कुछ प्रयास गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से। किसी भी व्यक्तिगत भागीदारी के आधार पर परिवर्तन का प्रयास किया गया है तो वहीं सामूहिक भागीदारी ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[7] अधिकांश आन्दोलनों ने परम्परागत चिन्तन या शास्त्रों का उद्धरण नहीं दिया। उनमें कुछ चिन्तकों ने भारतीय शास्त्रों पर कठोर प्रहार किया। उनके अनुसार केवल सामाजिक प्रथाओं ने ही हरिजनों का शोषण नहीं किया, परम्परागत चिन्तन में भी हरिजन को एक स्वायत्त स्थान नहीं मिला। अतः उन्होंने हरिजनों को संस्कृति, धर्म परम्पराओं की बेड़ियों से मुक्त रहने को कहा। स्वातन्त्रयोत्तर भारत में करीब 1950 तक इसी विचारधारा का वर्चस्व रहा। परंतु इसके बाद इसमें व्यापक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं।

हरिजनों के संदर्भ में विशेष रूप से संवैधानिक व्यवस्थाओं को भली–भाँति लागू करने और उनके लिये प्रदत्त सभी अधिकारों को वास्तविकता में परिणत करने के लिये बनाये गये। विशेष अधिनियमों और कानूनों को भी सख्ती से लागू करने के प्रयास किये गये है उनमें से विशेष रूप से फैक्ट्री अधिनियम 1948, समान वेतन अधिनियम 1976 आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हरिजनों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिये उन्हें प्रदेश की विकासधारा से जोड़ने के उद्देश्य से हरिजन विकास संघ स्थापित किया गया। निराश्रित, निर्धन और कमजोर वर्ग के हरिजनों के सर्वांगीण विकास को सुनिष्चित करने, आवासों को निर्माण करने और उन्हें संचालित करने जैसे प्रमुख लक्ष्यों को लेकर हरिजन कल्याण निगम की स्थापना की गयी।[8]

प्रदेश में हरिजनों को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में चलाए गये कार्यक्रमों में 20 अगस्त 1995 से संचालित ''इंदिरा आवास योजना''विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस योजना को प्रदेश के 30 विकास खण्डों में संचालित किया जा रहा है। जिसके अंतर्गत 2500 के करीब इंदिरा विकास केन्द्रों का गठन किया गया है।[9] इसके अतिरिक्त प्रदेश के हरिजनों के समग्र विकास हेतु अन्य योजना भी संचालित है जिसमें हरिजनों को स्वयं सहायता, सम्बल और स्वावलम्बन की ओर अग्रसर करने हेतु अन्य कई योजनाएँ भी संचालित की गयी है जिनमें ''न्यू मॉडल चर्खा योजना'' कौशल सुधार प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पलामू जिलाः इस अध्ययन के लिए पलामू जिले के चार गांवों लेस्लीगंज, मनातू, पाटन एवं बांसडीह का चुनाव किया गया इसके चुनाव के पीछे मुख्य कारण यहां पर हरिजनों की उपलब्धता व

अवलोकन के आधार पर निम्नतर सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति रही है। पलामू जिला मुख्यतया अपने पलाश, लाह व महुआ के लिए जाना जाता है। यह पलामू कमिशनरी का मुख्यालय है। यहां की कुल आबादी 1904596 है जिसमें पुरूष 1004890, महिला 899706 है। यहां की साक्षरता 57 प्रतिशत है। जिसमें अनुसूचित जातियों की संख्या 607594 है। इसमें पुरूष एवं महिला 304590 व 303004 हैं।[10] यहा का समाज अर्ध सामंति प्रकृति का है। उच्च जातियां यद्यपि कम संख्या में रहे हैं परंतु पारंपरिक तौर पर इन्होंने सामाजिक आर्थिक उच्चता तथा राजनीतिक शक्ति का लाभ लिया है। जबकि दलित अधिक संख्या में होने के बावजूद इनके इशारों पर काम करने वाले व निम्न सामाजिक प्रस्थिति वाले रहे हैं। परंतु वर्तमान स्वतत्रता व राजनीतिक तथा विकासवादी परिप्रेक्ष्य के कारण दलितों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है।

निष्कर्षः इस प्रकार स्पष्ट है कि दलितों की स्थिति में प्रत्येक क्षेत्र सुधार दृष्टिगोचर हुआ है, लेकिन समाज में उन्हें वांछित स्थान दिलाने हेतु अभी इस ओर बहुत कुछ किया जाना बाकी है। वास्वविकता यह है कि दलितों की स्थिति बदलने के लिये तमाम सरकारी और कानूनी प्रयास तभी अधिक कारगर हो सकते हैं, जबकि समाज की सम्पूर्ण सोच, रवैये और पूर्वाग्रहपूर्ण धारणाओं में भी उनके प्रति बदलाव आये। दुर्भाग्यवश हमारी वैज्ञानिक और औद्यौगिक प्रगति और आधुनिकता को अंगीकार करने के हमारे अनेकानेक दावों के बावजूद समाज की सोच, रवैये और पूर्वाग्रहपूर्ण धारणाओं से जो परिवर्तन आ रहा है उसकी गति बहुत धीमी है। परिणामस्वरूप इक्कसवीं शताब्दी में भी अनेक हरिजन समूह आज भी बाधाओं, वर्तमान और वंचनाओं की शिकार है, जिन्हें लक्ष्य बनाकर अभी हमें उनके लिये लड़ाई जारी रखनी है तभी हम निर्धारित लक्ष्य तक पहुँच पायेंगे।

आज गरीबी और मजबूरी को पर्याय बन रहे है हरिजन! जमीनी स्तर पर जो सत्य सामने है उनका हाशिए पर ढकेला जाना छोटे उद्योग का कोई भविष्य बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सामने नजर नहीं आता। सरकारी क्षेत्रों में निजीकरण की प्रकिया चालू है। इसके चलते ये निम्न समूह भारी संख्या में अनियमित अकुशल एवं असंगठित मजदूरों के रूप में काम कर रहे है। हमारे देश की सबसे बड़ी विडम्बना रही है कि पूंजीवाद के विकास के साथ–साथ पुरानी सामंतों मूल्यों का खात्मा नहीं हुआ। सामंती मानसिकता अभी भी दलितों को वह दर्जा नहीं दे पाती जो उन्हें मिलना चाहिए। पूंजीवाद विकास के नाम पर पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने हमारे देश में अपना बाजार बना लिया और उनके माल को बेचने के लिये भारतीय निम्न जातियों का व्यावसायिक इस्तेमाल करने लगे। पढ़े–लिखे और जागरूक हरिजन घोषणाओं और यथार्थ के बीच के अंतरविरोध को समझते है पर क्या वे स्वरोजगार, माइका क्रेडिट स्कीम, किशोरी शक्ति योजना, कानूनी अधिकारों पर कार्यशालाएं, बैंक लोन, पुलिस प्रशासन के साथ सहयोग, महिला पक्षधर तकनीक का विकास, सम्पूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषाहर के लिये योजनाओं आदि जैसे कार्यक्रमों और एक सुंदर भविष्य का सपना तो दिखाती है, लेकिन कुछ एक को छोड़कर कोई योजना कार्यरूप में सफल नहीं हो पाती।[11] कभी पैसों की कमी तो कभी योजनाओं के लागू करने में सरकारी तंत्र में घुसे भ्रष्टाचार के चलते योजनाएं कागज पर ही बनी रह जा रही है।

यहां पर स्वंयसेवी संस्थाओं को जमीनी लड़ाई लड़नी होगी। हरिजनों को विश्वास में लेकर यथार्थ की तह में जाना चाहिए। आयोग व प्रशासनिक तंत्र का इस्तेमाल सत्ताधारी वर्ग अपने ढंग से करता है। इसलिये पूर्णरूप से प्रशासनिक पर निर्भर नहीं हुआ जा सकता। उनसे यह उम्मीद करना है कि योजनाओं को सही ढंग से कार्यान्वित करे मात्र एक दिवास्वप्न ही है। इसकी लड़ाई सारे स्वंयसेवी संस्थाओं को मिलकर लड़ना होगा। हरिजनों में वैचारिक तौर पर जागृति लाना होगा। विभिन्न स्तरों पर कुछ हरिजन और स्वंय सेवी संस्थाएँ हरिजन अधिकार के लिये आवाज उठा रहे है। वह अपना हक, सम्पति में हिस्सा, खेत, खाद्यान्न एवं कल–कारखानों में अपने उपर हो रहे अन्याय के विरूद्ध बोल रहे है। अपनी मर्यादा और अभिव्यक्ति के अधिकार का प्रश्न उठा रहे हैं। हमें इस आवाज को दिशा देनी है और उन्हें संगठित करना है। हरिजन सुधार को मात्र एक नारा नहीं समझकर उसे अपनी शक्ति को पाने वाला माध्यम समझ उसे सफल बनाने की दिषा में एक प्रयास मिलजुल कर करें। तभी यह अभियान सफल हो सकेगा। डॉ. निलीमा सिंह[12] के मतानुसार दलित न्याय नहीं, अधिकार मांगते हैं, अपना मान और सम्मान चाहते है। जैसे–जैसे हरिजनों में शिक्षा बढेगी, उनके साथ हिंसात्मक गतिविधियों में कमी

आती दिखलाई पड़ेगी। कुछ कालों को छोड़कर भारतीय समाज सामंती समाज रहा है। हरिजनों की समाज में निम्नतर स्थिति सर्व स्वीकार्य है, यही स्थिति इनके शोषण, दयनीय स्थिति, असमानता की जड़ में है और यहाँ यह तथ्य स्वीकृत होता दिखता है कि ''भागीदारी नही तो भाग (हक नहीं) का सिद्धांत व्यवहार में भी फलित होता रहा है जो हरिजनों के विकास की आवश्यकता को उनके विकास से दूर अग्रसारित करता है ''

संभवतः यही कारण है कि आज के दौर को जाति मुक्ति का समय कहा जा रहा है। जाहिर है कि आज हरिजन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतंत्र है। सामाजिक व रूढ़िवादी मान्यताओं रूपी बेड़ी को उसने काट कर फेंक दिया है। खास बात यह है कि समय के साथ–साथ चलते हुये भी उसने अपनी संस्कृति का दामन नहीं छोड़ा। आज भी उसके लिये समाज पहली प्राथमिकता है। मनोरंजन, खेल, राजनीति, व्यापार, चिकित्सा, विज्ञान जैसे क्षेत्र में हरिजन श्रेणी के लोग अपनी उपलब्धियों के झंडे तेजी से गाड़ने में व्यस्त हैं।

इसी सदी के अंतिम दशक की शुरूआत से ही भारत में हरिजनों के बीच जागृति तेजी से बढ़ने लगी थी। उदारीकरण की हवा ने तो इनको मानों पंख लगा दिये।

लेकिन हरिजन विकास को हम सिर्फ वैधानिक एंव संवैधानिक अधिकारों के साथ ही सुदृढ़ नहीं कर सकते। जब तक इनकी शैक्षेणिक स्थिति सुदृढ़ नही होगी तब तक हरिजन विकास का प्रश्न अधुरा रहेगा। शिक्षा का सीधा सम्बन्ध विकास से है, विशेषतः निम्न जातियों का विकास तब तक सम्भव नही जब तक वह शिक्षित न हो क्योंकि साक्षरता का सकारात्मक संबंध विकास, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, निम्न जन्मदर एंव निम्न मृत्युदर से है।

विभिन्न योजनाओं एंव समितियों के पश्चात् भी हरिजन विकास उस गति से अपने लक्ष्यों की ओर नही बढ़ पा रही है जैसा कि आपेक्षित था। शिक्षा के माध्यम से वे विज्ञान,कौशल जीवन मूल्य एंव दृष्टिकोण हासिल कर सकते है जिससे उसके जीवन की गुणवत्ता बढ़ सके। शिक्षा को सिर्फ साक्षरता के संदर्भ से जोड़कर देखा जाना सर्वथा अनुचित है । शिक्षा का संबंध स्वस्थ एंव जागरूक समाज से है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा के अलावा भारत में हरिजन कल्याण संबंधी गतिविधियों को संस्थागत ढॉचा उपल्बध कराने और संवैधानिक सुरक्षा उपलब्ध कराने हेतु अनेकानेक कदम उठाये गए हैं। आजादी के बाद से ही इनका विकास देष की आयोजन प्रणाली का केन्द्रीय विषय रहा है। 1970 के दशक में जहां कल्याण की अवधारणा अपनाई गई वही 1980 के दशक में विकास पर बल दिया गया। 1990 के दशक से निरंतर निम्न समूहों के विकास पर बल दिया जा रहा है और ऐसे अथक प्रयास किए जा रहे है, जिनसे ये समूह भी निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हो और नीति निर्माण के स्तर पर भी उनकी सहभागिता बढ़े।

एक अंतिम क्षेत्र में जिसमें सहभागिता के बिना हरिजनों की उन्नति व विकास नहीं हो सकती वह है राजनीतिक क्षेत्र। हरिजनों की उन्नति व विकास के लिए आवश्यक है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, विशेषकर राजनीति में उसका सशक्तिकरण हो, उसकी सहभागिता का स्तर उच्च हो ऐसा होने पर ही सामाजिक आधार पर एक समानतापूर्ण समाज की स्थापना होगी हरिजनों राजनितिक सषक्तिकरण हेतु तीन आधारभूत सिद्धांतो को अनिवार्य माना जा सकता है–

1. सामाजिक समानता।
2. स्वयं की क्षमताओं के पुर्ण विकास का अधिकार।
3. स्वय के प्रतिनिधित्व व स्वय के संदर्भ में निर्णय लेने का अधिकार

राजनीतिक सहभागिता व प्रतिनिधित्व के माध्यम से हरिजनों के उत्थान व विकास के बेहतर प्रयास किये जा सकते हैं। जिससे व समाज की मुख्य धारा से जुड़ते हुये अपना व अपने समाज का बेहतरी से विकास कर सकें।

संदर्भ सूची

1. देसाई महादेव, 1990, द फैमिली ट्री,क्वेस्ट प्रकाशन, नई दिल्ली पृ 20
2. डे हान, अर्जन, 1997, पोवर्टी एण्ड सोशल एक्सक्लुजनः ए कंपेरिजन डिबेट ऑन डेपरिवेस्न, पॉवर्टी, रिसर्च युनिट, वर्कींग पेपन नं 2, युनिवर्सिटी ऑफ ससेक्स, ब्रीघटन पृ 67

3. प्रसाद, सुरेश ''महिला उत्पीड़न एवं मानवाधिकार (कामकाजी एवं दलित महिलाओं के विशेष संदर्भ में) राष्ट्रीय संगोष्ठी'', अक्टूबर में 15–17, 2005
4. एन सी आर बी रिपोर्ट 1996
5. ह्यूमन राइट्स एण्ड सोशल वर्कः ''टूवर्ड्स राइट्स– बेस्ड प्रेक्टिस'', जिम आइक– केम्ब्रिज यूनिवसिर्टी प्रेस, यु0के0, 2001, पृ0–1
6. कश्यप, सुभाष, 2010, भारत का संविधान, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली पृ 31
7. सेन, अमर्त्य, 2004, सोशल एक्सक्लूजनः कॉन्सेप्ट, एप्लिकेशन एण्ड सेक्यूरिटी, क्रिटिकल क्वेस्ट, नई दिल्ली पृ 12
8. सिलवर, हिलेरी, 1995, रिकंसेप्चूअलाइजिंग सोशल डिस्एडवांटेजः थ्री पाराडाइम ऑफ सोशल एक्सक्लूजन इन सोशल एक्सक्लूजनःरेटोरिक, रियालिटी, रेसपोंसेस एडिटेड बाई रॉजरर्स गेरी एण्ड ऑल, इंटरनेशनल इंस्टिच्यूट ऑफ लेबर स्टडीज, युनाइटेड नेशंस डेवलेपमेंट प्रोग्राम, जेनेवा पृ 102
9. अंबेडकर, बी. आर., 1989, अवे फ्रॉम हिंदू, राइटिंग एण्ड स्पीचेज, वॉल्यूम 5, गवर्मेंट ऑफ महाराष्ट्रा, बॉम्बे पृ 90
10. भारत की जनगणना 2011
11. थोराट एण्ड न्यूमैन, 2007, कास्ट एण्ड इकोनॉमिक डिस्क्रीमिनेशनः कॉजेज, कंसिक्वेंसेस एण्ड रिमेडिज, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, ऑक्टूबर 13, पृ 4122
12. कबीर, नैला, 2008, सोशल एक्सकलूजन, पॉवर्टी एण्ड डिस्क्रीमिनेशन टूवार्डस एण एनालिटिकल फ्रेमवर्क, क्रिटिकल क्वेस्ट, नई दिल्ली पृ 23